ISSN: 2456-947X, Vol II, Issue I, September-2018

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

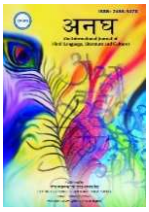

सांस्कृतिक अवधारणाओं के अनुवाद की समस्याएँ

रवि प्रकाश चौबे

शोधच्छात्र,

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली- 110067

Email ID: ravipchaubey@gmail.com

शोध-सार – किसी भी सभ्यता के आंकलन में उस देश या स्थान की संस्कृति, विकास तथा कला का विश्लेषण होता है। यह विश्लेषण तभी संभव है जब विविध भाषायी दीवारों को अनुवाद के माध्यम से गिराया जाए। आज वैश्वीकरण के इस दौर में अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और भौगोलिक सेतु के रूप में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संपदाओं को विस्तार देने का सशक्त माध्यम बना हुआ है। प्रत्येक समाज की संस्कृति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो सामान्यतया दूसरे प्रकार के समाज में नहीं पायी जातीं। ऐसे में यहाँ प्रश्न समुपस्थित होता है कि क्या संस्कृति व उसके विभिन्न अवधारणाओं को भाषान्तरण के माध्यम से व्याख्यायित किया जा सकता है? क्या वह संस्कृति अनुवादोपरान्त अपने निजता को बनाये रख पाएगी? क्या वह भाषा जिसमें संस्कृति अपने को अभिव्यक्त देख पा रही है, उसके स्थान पर कोई अन्य भाषा उसके सदृश ही सारे मापदण्डों व कसौटी पर खरी उतर पाएगी? इस आलेख में इन समस्त सवालों से जूझने का प्रयत्न किया गया है।

मूल शब्द – संस्कृति, अनुवाद, परम्परा, पाश्चात्य, रीति-रिवाज, मान्यता

I. प्रस्तावना

संस्कृति एवं भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है। सांस्कृतिक अवधारणाओं के विकास यात्रा का मापन उसकी भाषा के विकास द्वारा किया जा सकता है। जब वार्ता भाषान्तरण अथवा अनुवाद की हो तो सबसे बड़ी चुनौती यही है कि एक भाव मूल्य को उसके सहज और मौलिक मूल्य से बिना अलग किए दूसरे भाषिक व सांस्कृतिक मूल्य में कैसे परोसा जाए जिससे अनुवाद, अनुवाद न लगकर मौलिक रचना का अस्वादन दे। समस्या के दो आयाम हैं – एक भाषिक आयाम और दूसरा भावगत आयाम। सांस्कृतिक अवधारणाओं के अनुवाद की समस्याओं का संबंध इसी दूसरे भावपक्ष से है। जब वह समाज भी समसामयिक न हो तो समस्या और भी गहरी हो जाती है।

अनुवाद की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि अनुवादक मूल रचना के देश काल तथा संस्कृति को पूरी तरह आत्मसात कर ले। तभी मूल रचना के साथ उसका तादात्म्य हो सकता है। मगर तादात्म्य मात्र से समूची समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। प्रभावी अनुवाद के लिये लक्ष्य भाषा में उसे 'समानकों' की खोज

करनी पड़ेगी और यह बात हमेशा उसकी प्रतिभा और सामर्थ्य के वश की बात नहीं होती। अगर मूल रचना विदेशी या विजातीय परिवेश को लेकर चलने वाली हुई तो वह क्या करे? विजातीय परिवेश की जीवन-शैली, पर्व- त्यौहार, खान-पान, वेश-भूषा, आचार-विचार, अनुष्ठान और वैवाहिक व्यवस्था हमारे लिये एकदम अजनबी व अपरिचित होगें, तो हम उन तमाम चीजों को ज्ञान की परिधि में कैसे अवतरित कराएं? यह संकट एक आयामी नहीं है, यह तब भी बना रहता है जब हम अपनी संस्कृति को किसी विदेशी संस्कृति से संबद्ध लोगों को अनुवाद के जरिये समझाने का प्रयत्न करते हैं। यह बहुधा ग्रामीण कहावत की तरफ हमको अग्रसर कराता है कि *"भैंस के आगे बीन बजाना"* अर्थात् कि यह समस्या किसी सीमा तक असमाधानेय है।

II. देवी-देवता, धर्म, विश्वास तथा अनुष्ठानादि से संबद्ध सांस्कृतिक अवधारणाएँ

ईश्वर, धर्म, विश्वास, धार्मिक अनुष्ठान, आचारादि सनातन समय से ही मनुष्य जीवन के अविभाज्य अंग रहे हैं। भारतवर्ष आदिकाल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। धर्म तथा इसके द्वारा निर्देशित, अनुमोदित आचार- विचार, अनुष्ठान आदि युगों से भारतीय जन मानस के रगों में रूधिर सदृश दौड़ रहे हैं। हिन्दू सनातनी धर्म में 33 कोटि देवी-देवताओं की मान्यता है। यहाँ के विचार प्राङ्गण में कभी इस बात को लेकर विद्वेष नहीं होता कि आप फलाने देव पूजक हैं तो आप को अन्य देव की अराधना करने का अधिकार नहीं। यहाँ की वैचारिक पृष्ठभूमि *हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता* (*रामचरितमानस, बालकाण्ड, 139/05*) के भावों से अनुप्राणित है। साहिर लुधियानवी जी के शब्दो में -

ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥

[नया रास्ता(चलचित्र 1970) का एक गीत]

ईसाई तथा मुस्लीम परंपरा में क्रमशः GOD तथा अल्लाह की मान्यता है। उन्हे यह गंवारा नहीं कि उनका GOD तथा अल्लाह ही हमारे शिव विष्णु अथवा कोई भी देवता हो सकता है। शंकराचार्य तो और विषम परिस्थिति में डाल देते हैं, यह कहते हुए कि जीव ही ब्रह्म का स्वरूप है। अर्थात हम सभी अपने आप में GOD तथा अल्लाह हैं-

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।

(*वेदान्तदर्शन, मिथिलेश पाण्डेय, पृ. 17*)

छान्दोग्य उपनिषद् भी इस बात को परिपुष्ट बनाता है। जब श्वेतकेतु को उसके पिता कहते हैं कि वह सिरजनहार तुम ही हो - *तत् त्वम् असि। (छान्दोग्य उप., 6/8/07)*

अब ऐसी परिस्थिति में अनुवाद कहाँ तक समर्थ अभिव्यक्ति को प्रकाश में ला सकता है? भारतीय परम्परा में अनुष्ठान का विशेष महत्त्व है। वैदिक ऋषि कहता है कि दर्श-पूर्णमास याग के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करो-*दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत्।* (*यजुर्वेद*) अब भला जहाँ की संस्कृति में ऐसी अवधारणाएं नहीं हैं उन्हे अनुवाद भला कैसे कुछ बयाँ करवाने मे समर्थ हो सकता है? ऐसे बहुत प्रसंग हैं जिन्हें पाद टिप्पणी दिये बिना समझा पाना असंभव है।

III. वैवाहिक-मांगलिक अनुष्ठानों एवं रीति-रिवाजों से संबद्ध सांस्कृतिक अवधारणाएँ

भारतीय संस्कृति का मूलाधार परिवार है। अन्यान्य समाजों की अपेक्षा भारतीय समाज इस बात में भी विशिष्ट है कि यहाँ धर्म, दर्शन, व्यवसाय, शिक्षा, मूल्य, नैतिकता आदि अनेकानेक चीजों का वाहक साधन मुख्यतः परिवार है। परिवार का मूल आधार है- दांपत्य और दाम्पत्य के मूल में है विवाह। हमारे यहाँ विवाह दो व्यक्तियों या दो परिवारों का संबंध नहीं, समस्त बन्धु-बांधवों तथा समूचे समाज का मामला है। पाश्चात्य परम्परा में ऐसी कोई मान्यता नहीं है। ऐसी विषम परिस्थिति में दूसरी भाषा अनुवाद का चोगा पहन हमारे मूल्यों को क्या अपने पूर्ण स्वत्त्व में दिखा पाने में समर्थ हो पाएगी? जब कण्वदुहिता शकुन्तला अपने पतिगृह गमन हेतु उद्यत होती है तब तापस कण्व का भी मन उद्विग्न व चिन्तित होकर दुःखसागर में गोता लगाने हेतु स्वभावतः बाध्य हो जाता है। कण्व कहते हैं कि जब हम वनवासियों को पुत्री विदाई वेला में अपार दुःख एवं वेदना की अनुभूति हो रही है, वो भी अपनी नहीं औरस दुहिता के लिये तो गृहस्थों के दुःख की परिकल्पना कर पाना कहां तक संभव है?

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदमं स्नेहादरण्यौकसः।

पीड्यन्ते गृहिणः कथम् नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

(*अभिज्ञानशाकुन्तलम्, राकेश शास्त्री, पृ. 166*)

भला इस प्रतीति को पाश्चात्य परम्परा में अनुवाद कहाँ तक अनुप्राणित कर पाएगी। आज परिस्थिति जो भी हो, आज भले ही हम पुरूष-महिला के समानता की बात करते हैं किन्तु पुरातन भारतीय परम्परा में पति का पत्नियों पर सब प्रकार का प्रभुत्त्व स्वीकार किया गया है, जैसा कालिदास कहते हैं-

उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥

(*अभिज्ञानशाकुन्तलम्, राकेश शास्त्री, पृ. 204*)

पति के परिवार में दासता तक को स्वीकार किया गया है। शाङ्र्गरव शकुन्तला से कहता है-

पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।

(*अभिज्ञानशाकुन्तलम्, राकेश शास्त्री, पृ. 204*)

ऐसी पंथीय परम्पराओं और मजहबी मान्यताओं का बोलबाला पश्चिम समाज में नहीं है। वहाँ का वैवाहिक संबंध भारतीय परिप्रेक्ष्य से अलग होता है। नारी में स्वामीभाव तथा दासता आदि की कोई परिकल्पना नहीं हैं। ऐसे में अनुवादक सिर फोड़ने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता है? पगे-पगे उसे पाद टिप्पणी का ही सहारा लेना होगा। मांगलिक कार्यों में सदैव हम सर्वप्रथम अपने अभिष्ट की स्तुति करते हैं, नमस्क्रियात्मक अथवा आशीर्वादात्मक मंगलाचरण प्रायेशः सर्वत्र समुपलब्ध होता है –

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभः।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्व कार्येषु सर्वदा ॥

(ईश मंत्र। गणेश, अन्तर्जाल से)

अपरं च

मङ्गलं भगवान विष्णु मङ्गलं गरूणध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलाय तनो हरिः ॥

(*मङ्गलार्थक मंत्र*)

ऐसी भी सांस्कृतिक अवधारणाओं का अभाव है पश्चिम समाज में अतएव अनुवाद बिना टिप्पणी कर पाना *नाकों चने चबाना है अर्थात् दुष्कर कार्य है।* एक उदाहरण को देखते हैं- अंग्रेजी में अंकल शब्द आता है जिसका प्रायेशः अर्थ चाचा लिया जाता है, किन्तु इससे इतर भी मामा, ताउ, मौसा, फूफा आदि के अर्थ को भी मात्र इस शब्द से ही व्याख्यायित किया जाता है। भोलानाथ तिवारी के मंतव्य में-

अनुवादक को अंकल शब्द का अनुवाद करने के पूर्व उसके अर्थ से तादात्म्य कर लेना चाहिए कि वह मामा, ताउ, मौसा, फूफा आदि किसके अर्थ हेतु प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार कजिन ब्रदर मौसेरा, चचेरा, ममेरा, फूफेरा कोई भी भाई हो सकता है।

(अनुवादविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृ. 59)

वास्तव में इस प्रकार के बहुतेरे संबंध पश्चिम में है हीं नहीं तो जाहिर है कि वहां के जनमानस को इनके अभिप्रेत अर्थ को आत्मसात करने में बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

भारत भले ही भौगोलिक दृष्टि से एक राष्ट्र है किन्तु सामाजिक, ऐतिहासिक, और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बहुत सारी विविधताओं को अपने भीतर समेटे हुए है।इसके संस्कृति के विभिन्न सोपानों पे आरूढ़ हुए बिना, उसके मर्म को समझे बिना अनुवाद बहुत श्रमसाध्य और कठिन रचना-प्रक्रिया बन जाता है। उदाहरणार्थ- मिथिलांचल में ब्राह्मण मांस-मछली खाते हैं, जबकि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में मांसाहार वर्जित है।बिहार में जीजा-साली के मध्य हास-परिहास का रिश्ता चलता है, जबकि केरल में भाई-बहन की तरह लिहाज किया जाता है। इन सांस्कृतिक पहलूओं के नासमझियों ने जाने-अनजाने समझ के स्तर पर बहुत ही बेड़ा गर्क किया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमारे समाज द्वारा अङ्कीकृत् जूता और टाई का फैसन है। ब्रिटेन की भौगोलिक परिस्थिति में शीत का अधिक प्रभाव है जिससे वहां के लोग शीत से राहत पाने हेतु टाई तथा जूते- मोजे का प्रयोग करते हैं किन्तु यदि यही प्रयोग गर्मी से तप रहे भारत के दक्षिण प्रान्तीय लोग करें तो इसे नासमझी का प्रतीक ही मानना उचित प्रतीत होता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में तो खासकर शब्दावलियों की विराट अर्थ-ध्वनियाँ हैं। सर्वनामों और क्रियापदों की विशिष्ट प्रयुक्तियाँ हैं। अंग्रेजी का 'एंगर', हिन्दुस्तानी में गुस्सा, क्रोध, कोप बनकर आता है। पर स्थिति यह है कि अंग्रेजी में परशुराम भले एंग्री हो जाएँ, हिन्दी मे वे गुस्सा नहीं होंगे, क्रोधित होंगें; अंग्रेजी में भगवान विष्णु भले एंग्री हो जाएँ, हिन्दी में गुस्सा नहीं होगें, कुपित होंगे। इस तरह के असंख्य उदाहरण विभिन्न भारतीय भाषाओं से लिए जा सकते हैं। इसी तरह

हर भाषा-क्षेत्र की संस्कृति और शब्द-संस्कार का ध्यान रखना आवश्यक है। (*अंतरंग पत्रिका, सितम्बर 2013, सपां.-प्रदीप बिहारी, पृ.29*)

IV. लोक साहित्य, मुहावरे, विभिन्न विश्वास आदि से संबद्ध सांस्कृतिक अवधारणाएँ

मनुष्य के भीतर तर्क बुद्धि के साथ साथ एक ऐसा मन भी है जो अतार्किक और तर्कातीत बातों पर भी विश्वास करता है । पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही मान्यताओं को, विभिन्न विश्वासों को लोग आज भी उसी शिद्दत से पनाह दिये हुये हैं। इसमें वैज्ञानिक आवरण हो या न हो इसकी परवाह नहीं । इनकी एक अविछिन्न परम्परा है । लोक साहित्य वस्तुतः लोकमन की ही अभिव्यक्ति होता है । समूची प्रकृति उसके सुख-दुःख में सम्मिलित होती है। विवाह जैसा कृत्य जिसमें समूची प्रकृति आमंत्रित होती है, उसकी समृद्धि ही लोक के उल्लास का कारक होती है । ऐसे में प्रकृति की विपन्नता लोक की चिन्ता का कारण है, क्योंकि ऐसे में बेटी का विवाह संभव नहीं होगा । लोक गीत की इन पंक्तियों में यह चिन्ता मुखरित और अभिव्यक्त हो रही है-

सूखि गईले ताल रे, सूखि गईले पोखर
कमल गईले कुम्हिलाय ।
गंगा जमुना बीचे रेत जे पड़ि गईले
कईसे होई गउरा के बिआह ॥

(*साहित्य और संस्कृति मे पर्यावरणीय संवेदना, नरेन्द्र नाथ सिंह, पृ. 73*)

यहाँ वर्णित 'गउरा' शब्द पार्वती का नहीं अपितु समस्त अविवाहित कन्याओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है, ऐसे में अनुवाद एक कष्टसाध्य प्रक्रिया है । तुलसीदास जब कहते हैं कि समस्त संसार को वे सीताराममय देख रहे हैं तो उनका अभिप्राय दशरथ पुत्र राम व जनक दुहिता सीता से नहीं है अपितु उनका ईशारा उस परमपिता परमेश्वर की तरफ है ।

सीय राम मैं सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।

(*रामचरितमानस, बालकाण्ड. 17/02*)

भाषायी स्तर पर लक्षणा और व्यंजना का अभिप्रयोग अनुवादकर्ता हेतु समस्याओं का संसार खड़ा कर देता है । ऐसे परिस्थिति में एक अच्छे अनुवादकर्मी का दायित्व बन जाता है कि वह केवल मूल रचना का अनुकरण मात्र न करे बल्कि अलग अलग मापदण्डों को आधार बनाकर वह उस अर्थ को देश काल के अनुरूप पुनर्जीवित करने का पुरजोर प्रयास करे ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियों के अनुवाद में भी अनुवादक को बहुत समस्या होती है । शब्दों के जाल से कोसों परे संस्कृति से तादात्म्य रखते हुए उसको भावानुवाद से गुज़रना होता है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

1) कोल्हू का बैल ।
2) मुँह काला करना ।
3) नीम हकीम खतर-ए-जान ।
4) कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ते है । (Can you teach an old woman to dance?)
5) आँखें चार होना । इत्यादि

अभीष्ट अर्थ या अभिप्रेत अर्थ को समझने के लिये अनेक नियामक हेतु या आधार होते हैं। अनुवादक को इन नियामक हेतुओं या आधारों से भली-भाँति परिचित होना चाहिए । हर संस्कृति की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं, अतः उन विशेषताओं के अनुरूप, उस संस्कृति की भाषा में कुछ विशिष्ट शब्द व अभिव्यक्तियाँ होती हैं । ऐसे शब्द व अभिव्यक्तियाँ प्रायेशः अपने पैनेपन के साथ अनुदित नहीं हो पातीं । उदाहरणार्थ,

"अंगद का पैर, दधीचि की हड्डी, द्रोपदी का चीर, भीष्म प्रतिज्ञा, सोने की लंका *आदि ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ हैं जो शैली मे जितना आकर्षक पैनापन ला देती हैं, अनुवाद में उतनी ही दुरूह और प्रायः अननुवादेय हैं "। (अनुवादविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृ . 152)*

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध कहानी ***"काबुलिवाला"*** में लड़की विवाह के समय **चेली वस्त्र** (*बंगाल का पहनावा जिसमें विवाहिता पूरे शरीर पर एक रेशमी साड़ी पहने रहती है*) धारण किये हुए है। भला इस पहनावे का अनुवाद संभव है? इसी प्रकार चावल के दानें और *अक्षत* में सांस्कृतिक दृष्टि से बुनियादी भेद है। एक समान दृष्टिगम्य होनेवाले पदार्थों का अनुवाद एक समान नहीं किया जा

सकता । समस्या की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती । बहुत ऐसे शब्द हैं जिनका एक भाषा में अलग अर्थ तो दूसरी भाषा में अलग । उदाहरण के तौर पर, हिंदी में **'चाचा नेहरू'** कहते हैं, किन्तु चाचा का मलयालम संस्कृति मे उतना आदरपूर्ण स्थान नहीं है । इसीलिये 'चाचा नेहरू' को मलयालम में '**मामा नेहरू'** कहते हैं ।

संत गुरु रविदास ने जीवन के कई पक्षों के साथ साथ अध्यात्म को अपनी कविता का विषय बनाया है । वे लिखते हैं -

ऐसे तैं मैं येक रूप है माधो, आपण ही निरवरियै ।

(*रविदास की कविता, अनुवाद पत्रिका, जनवरी 2014, पृ. 24*)

माधो एक ऐसा शब्द है जिसमें धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक भंगिमाएँ हैं । यह शब्द कृष्ण के अर्थ के इतर सखा, परमात्मा आदि के भाव को भी अपने भीतर समाहित किये हुये है । अंग्रेजी में इस प्रकार के कोई पर्यायवाची शब्द नहीं । (*रविदास की कविता, अनुवाद पत्रिका, जनवरी 2014, पृ. 24*)

उपसंहार

प्रत्येक देश की संस्कृति उसकी सभ्यता उसके रीति-रिवाज प्रायः एक दूसरे से पृथक् हैं जिन्हे केवल उनकी भाषा ही अभिव्यक्त व हृदयंगम कराने मे सहायक होती है ।सांस्कृतिक सन्दर्भों के विविध आयामों का अनुवाद न सिर्फ़ अत्यन्त संश्लिष्ट है, बल्कि एक सीमा के बाद असंभव हो जाता है ।***जनेउ, खड़ाउँ, यज्ञोपवीत, छठी का दूध, सिन्दूरदान, हल्दहाथ, गाल सेकाई, कन्यादान, दान के बछिया के दाँत नहीं गिने जाते, एक तो भीख,वो भी पछोर-पछोर*** जैसे हजारों शब्द हैं जो दूसरे संस्कृति मे विद्यमान नहीं अत एब अननुनद हैं ।

सारांशतः आज के जटिल और मिश्रित पर्यवस्थिति से भरे-पूरे सामाजिक परिदृश्य में अनुवाद अध्ययन की शिक्षा-पद्धति विकसित करने हेतु यह ध्यान हर समय रखना होगा कि मूल पाठ के वाचक एवं विषय, वाचक और विषय के उद्देश्य, भाषा क्षेत्र, परिवेश, संस्कृति, भाषा विज्ञान, लोक-प्रयुक्ति, विषय की सम्वेदनशीलता के मद्देनजर ही कोई अनुवादक या अनुवादक-चिन्तक अपने को लक्ष्य भाषा के लिए तैयार करे और अनुवाद की कोटि तय करे ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, 2013.
- सदानन्दयोगीन्द्र, वेदान्तसार, व्या.- पाण्डेय, मिथिलेश. राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009.
- ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 2011.
- कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्या.- शास्त्री, राकेश एवं प्रतिमा. संस्कृत ग्रन्थागार, दिल्ली, 2015.
- तिवारी, भोलानाथ. अनुवाद विज्ञान, किताब महल, दरियागंज नई दिल्ली, 2005.
- बिहारी, प्रदीप. अंतरंग पत्रिका, सितम्बर 2013, चतुरंग प्रकाशन, बेगूसराय.
- सिंह, नरेन्द्र नाथ. साहित्य और संस्कृति मे पर्यावरणीय संवेदना. अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
- सैनी, नरेन्द्र. अनुवाद पत्रिका, जनवरी 2014, भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली.
- https://www.bhaktibharat.com/.../vakratunda-mahakaya-ganesh-shl. अन्तर्जाल से गृहीत।